अध्याय–3

बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण

अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ की हत्या करके पुष्यमित्र शुंग ने 185 ईस्वी पूर्व में मौर्य साम्राज्य को समाप्त कर दिया। सन् 200 ईस्वी पूर्व के बाद का जो युग था जिसे हम मौर्योत्तर भारत की संज्ञा दे सकते है । इस समय कोई बड़ा साम्राज्य तो स्थापित नहीं हुआ, पर यह युग ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसलिए महत्वपूर्ण है कि उस युग में मध्य एशिया से सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुए और विदेशी तत्वों का भारतीय समाज में समावेश हुआ । असंख्य यूनानी भारतीय धर्मों के अनुयायी बन गए। यूनानियों ने क्रमशः भारतीय ढ़ंग को अपना लिया। समय के साथ वे जैसे भारतीय भूमि की उपज ही बन गए और अन्त में यूनानी विशेषताऐं भारत में ही आत्मसात होकर मुख्यधारा में विलीन हो गई। मौर्योत्तर काल में किसी एक राजवंश का सम्पूर्ण भारत पर नियत्रंण नहीं था, बल्कि अनेक क्षेत्रिय व स्थानीय राजवंशों का अलग–अलग क्षेत्रीय में शासन था। अध्ययन की सुविधा की दृष्टिकोण से इन शासक वर्गों को दो भागों में बाँटा जा सकता है – विदेशी शासक व भारतीय शासक । विदेशी शासकों में मुख्यतः यूनानी (इण्डो–ग्रीक जिन्हें हिन्दयवन भी कहा जाता है), शक, कुषाण व हूण राजवंशों को रखा जा सकता है। भारतीय शासकों में शुंगवंश , कण्ववंश, चेदिवंश और सातवाहन वंश के शासक प्रमुख थे।

मौर्योत्तर काल से हमारा तात्पर्य उस काल से है, जो मौर्य साम्राज्य के पतन से लेकर गुप्त साम्राज्य के उद्भव तक के इतिहास को बताता है । यह वह काल था, जब मोर्यों को केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था बिखर रही थी और विदेशी राजवंश भारत पर निरन्तर आक्रमण कर रहे थे , दूसरी और कई भारतीय राजवंश अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत थे ।

इस समय उत्तर और दक्षिण भारत भारतीय शासकों के अधीन ही रहा किन्तु भारत के उत्तर–पश्चिम सीमा विदेशी आक्रान्ताओं का प्रवेशद्वार बन चुकी थी । पश्चिमोतर भारत से ही यूनानी, शक, हूण व कुषाण जैसे जातियों ने अपने कदम आगे बढ़ाए थे ।

जानकारी के स्त्रोत– मोर्यो की पराजय के तुरन्त बाद के समय के लिए गार्गी संहिता, पंतजलि के महाभाष्य, दिव्यावदान, कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा बाणभट्ट के हर्षचरित व इतिहासकार कल्हण की ऐतिहासिक पुस्तक राजतंरगिणी से जानकारी मिलती है ।

कुषाण राजा कनिष्क के दरबार में उच्चकोटि के दार्शनिक, वैज्ञानिक व साहित्यकार रहते थे । कनिष्क के दरबार का महान कवि अश्वघोष था, जिसने संस्कृत में बुद्धचरित, सौदरानन्द महाकाव्य व सूर्यालंकार और सारीपुत्र प्रकरण लिखे। शून्यवाद, सापेक्षवाद व माध्यमिक सूत्र के प्रवर्तक नागार्जुन भी इसी कालखण्ड के प्रसिद्ध दार्शनिक हुए हैं जो सार्थक, जानकारी प्रदान करते है ।

चरक संहिता के रचयिता महर्षि चरक के अलावा चीनी इतिहास ग्रन्थ व चीनी यात्री हवेंग्सांग की यात्रा विवरण, तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के साथ साथ बौद्ध विद्वान वसुमित्र व बौद्ध साहित्य त्रिपिटक,''मिलिन्दपन्ह'' भी हमें विदेशी आक्रमणकारियों की जानकारियाँ उपलब्ध करवाता है। कौशाम्बी, सारनाथ व मथुरा की कनिष्क कालीन मुद्राएँ भी सही संकेत देती है। यह सिक्के बहुत महत्वपूर्ण स्त्रोत है क्योंकि उन पर शासकों के नाम अंकित है। सिकन्दर के साथ आयें नियार्कस, आनेसिक्रिटस और एरिस्टोब्युलस जैसे लेखक भी मददगार हैं।

यूनानी आक्रमण व भारत की राजनैतिक स्थिति

जिस समय संसार को जीत लेने की इच्छा से मकदूनिया का शासक सिकन्दर अपने सैनिक अभियान पर निकला था, उस समय भी उत्तरी पश्चिमी भारत की स्थिति वैसी ही थी, जैसी भारत पर हुए ईरानी आक्रमण से पहले थी। पूरा उत्तरी पश्चिमी भारत छोटे–छोटे कई राज्यों में विभक्त था। काबुल के उत्तर में गंधार, झेलम और चिनाब के बीच में पौरव, रावलपिण्ड़ी और पेशावर के हिस्से में तक्षशिला, कश्मीर के पश्चिम में रावी और व्यास नदियों के बीच का भाग कठ, उसके निकट क्षुद्रक, इसी तरह रावी और चिनाब नदी के संगम स्थल के भाग में मालव, मूसक, सम्बोस और वे ऐसे ही अन्य राज्यों को मिलाकर उस काल में भारत का उत्तरी पश्चिमी भाग कुल 25 राज्यों में बँटा था। इनमें से कुछ गणतंत्र थे और कुछ राज्य राजतंत्रात्मक शासन पद्धति से शासित राज्य थे। राजतंत्र के शासक गणतंत्रों से विरोध रखते थे। पौरव और तक्षशिला तथा

तक्षशिला और अभिसार में शत्रुता थी। इसी तरह क्षुद्रक और मालव तथा अभिसार व पौरव के बीच सम्बन्ध अच्छे नहीं थे और सम्बोस और मूसक एक दूसरे के शत्रु थे। ऐसी राजनैतिक परिस्थितियों में मकदुनिया का राजा सिकन्दर ईसा पूर्व 327 में ईरान के शासक को अराबेला के युद्ध में परास्त कर भारत की तरफ बढ़ा।

सिकन्दर का भारत में आगमन– ईसा पूर्व 327 में मकदुनिया के शासक सिकन्दर के भारत की तरफ बढ़ने पर कुछ देश प्रेम से ओतप्रोत सीमान्त राज्यों के शासकों में दिल खोलकर अपना सब कुछ मातृभूमि की रक्षा के लिए समर्पित कर दिया, लेकिन शशिगुप्त और आंभी जैसे देशद्रोहियों और विश्वासघात करने वाले शासकों ने सिकन्दर का साथ दिया। सिकन्दर सीस्तान और अफगानिस्तान को जीतता हुआ, काबुल घाटी से होकर भारत पर चढ़ आया, उसने हवाली को और पाश को जीता और फिर हिन्दुकुश को पार किया यहां शशिगुप्त ने उसका स्वागत किया। यहीं से उसने अपनी सेना के दो भाग किए। सेना के एक हिस्से को अपने विश्वासपात्र सेनापति–हेफ्रिस्तियन और पर्दिकस के नेतृत्व में सिन्धु नदी पर पुल बनाने के लिए भेजा और दूसरे भाग का नेतृत्व खुद संभाल कर भारत की तरफ आगे बढ़ा। अभी सिकन्दर ने भारत की भूमि पर पाँव नहीं रखे थे, लेकिन इसी समय तक्षशिला के राजा आंभी ने सिकन्दर के पास भारत पर आक्रमण करने का निमंत्रण भेजा। अपने संदेश में आंभी ने सिकन्दर को सहायता देने का आश्वासन भी दिया। तब उत्साहित होकर सिकन्दर आगे बढ़ा और भारत में प्रवेश किया।

इस अवसर पर उसे भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर स्थित राज्यों से युद्ध करना पड़ा। यूनानी लेखक एरियन के विवरण से प्रकट होता है कि भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर सबसे पहले उसकी मुठभेड़ अश्मकों या अश्शायनों से हुई। अश्मको ने जबरदस्त प्रतिरोध किया। उन्होंने सिकन्दर की सेना के दांत खट्टे कर दिये, लेकिन अंत में सिकन्दर विजयी रहा। सिकन्दर ने चालीस हजार अश्मकों को बंदी बनाया। इसके बाद सिकन्दर ने नीसा वाले गौरियों पर आक्रमण किया। नीसा वालों ने प्रतिरोध किए बगैर आत्मसमर्पण कर दिया। तब सिकन्दर ने आश्वकायनों, जिन्हें यूनानी लेखकों ने अस्सकेनोय लिखा है, पर आक्रमण किया। इस समय अश्वकायनों का राजा हस्ति या अष्टक था। यूनानी लेखकों ने इसे अस्सकेनस नाम से पुकारा है। इसी अस्सकेनस अथवा अष्टक या हस्ति ने अपने दुर्ग मस्सग में रहते हुए सिकन्दर का प्रतिरोध करने का निश्चय किया। मस्सग का दुर्ग प्राकृतिक दृष्टि से सुरक्षित था। अश्वकायनों ने उसके चारों तरफ खाई भी खोद रखी थी। ऐसी स्थिति में मस्सग दुर्ग अजेय था। सिकन्दर को मस्सग दुर्ग पर अधिकार करने के लिए कई बार आक्रमण करना पड़ा, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। एक आक्रमण में तो सिकन्दर घायल भी हो गया। इस आक्रमण और प्रतिरोध के दौर में ही एक दिन अचानक एक तीर राजा अष्टक को वेध गया और उसकी मृत्यु हो गई। राजा अष्टक की रानी क्लियोफिस ने आत्मसमर्पण कर दिया और अश्वकायनों के राज्य पर सिकन्दर का अधिकार हो गया। यहाँ सिकन्दर ने धोखा देकर अश्वकायनों के सात सौ वेतनभोगी सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया।

सिकन्दर मस्सग से आगे बढ़ा। उसने रास्ते में पड़ने वाली कई अन्य जातियों पर आक्रमण किए और उन पर जीत दर्ज करता हुआ वह अपनी सेना के उस भाग से जा मिला, जिसे उसने सिन्ध पर पुल बनाने के लिए आगे भेजा था। फिर अपनी पूरी सेना को लेकर सिकन्दर ने ओहिन्द के पास से नावों के बनाए गए पुल पर होकर सिन्ध को पार किया और वह तक्षशिला जा पहुंचा। तक्षशिला में आंभी उसका स्वागत करने के लिए इन्तजार कर ही रहा था। सिकन्दर के पहुंचते ही आंभी ने काफी मात्रा में चांदी के साथ भेड़, बैल आदि दूसरी कई चीजें भेंट स्वरूप सिकन्दर को दी। सिकन्दर ने उन वस्तुओं के साथ अपनी भेंट मिलाकर भेंट का पूरा सामान ससम्मान लौटा दिया। इसी समय कुछ अन्य भारतीय राजाओं ने भी सिकन्दर के सामने आत्मसमर्पण किया। कश्मीर के उत्तर पश्चिम में स्थित अभिसार के राजा ने भी सिकन्दर को आत्मसमर्पण का विश्वास दिलाया। अन्त में वह राजा पोरस की तरफ चला गया।

राजा पुरू अथवा पोरस का प्रतिरोध

तक्षशिला से सिकन्दर ने झेलम और चिनाब नदियों के बीच में स्थित पौरव राज्य पर अधिकार करने का निश्चय किया। तक्षशिला का राजा आंभी भी पुरानी शत्रुता के कारण यही चाहता था। अतः सिकन्दर को उत्साहित करने के लिए उसने अपने पाँच हजार सैनिक सिकन्दर को दिए। तब सिकन्दर ने पौरवों के राजा पुरू अथवा पोरस के पास आत्मसमर्पण कर सिकन्दर की अधीनता स्वीकार करने का संदेश भेजा। सिकन्दर को शायद यह मालूम नहीं था कि राजा पोरस की रगों में मातृभूमि के लिए सब कुछ बलिदान कर देने वाले भारतीयों का रक्त बह रहा था। इसलिए सिकन्दर का संदेश मिलते ही राजा पोरस ने प्रतिउत्तर में कहलवाया कि वह रणक्षेत्र में ही सिकन्दर से मिलेगा। राजा पोरस का उत्तर मिलने पर अपनी महत्वाकांक्षाओं से बावला हुआ सिकन्दर राजा पोरस को हराने के लिए झेलम नदी के किनारे तक आगे बढ़ा। उधर राजा पोरस तलवारों के वार से सिकन्दर का स्वागत करने के लिए पहले से ही झेलम के दूसरे तट पर मौजूद था। वर्षा की ऋतु थी। नदियों में बाढ़ आई हुई थी। इस कारण सिकन्दर को पोरस पर आक्रमण करने से पहले कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। दूसरा, सिकन्दर एकदम आमने सामने होकर पोरस से युद्ध करना नहीं चाहता था। वह किसी ऐसे मौके की तलाश में था, जब वह पोरस की धोखे में रखकर उस पर आक्रमण कर दे। कुछ समय में ही ऐसा अवसर सिकन्दर के सामने आ उपस्थित हुआ। एक दिन काफी वर्षा हुई। उस दिन रात के अंधरे में सिकन्दर ने अपनी सेना के साथ झेलम को पार किया और पोरस की सेना पर आक्रमण कर दिया। पोरस भी अपनी सेना के साथ शत्रु का मुकाबला करने के लिए आगे आया। यूनानियों और भारत की सेनाओं के बीच घमासान प्रारंभ हो गया। सुबह होने पर युद्ध में तेजी आई। पौरस और उसके भारतीय सैनिक यूनानियों के छक्के छुड़ाने लगे। दोपहर का समय हो गया। भारतीय सैनिकों के पराक्रम के सामने यूनानी

सेना घबराने लगी। ऐसा लगने लगा कि यूनानी हार कर भाग खड़े होंगे। तभी पोरस की सेना में हाथियों के कारण भगदड़ मच गई। भारतीयों की सेना में हाथी अधिक संख्या में होते थे। अधिकांश योद्धा हाथियों पर बैठकर ही युद्ध करते थे। यूनानी सैनिक घोड़ों पर बैठकर युद्ध कर रहे थे। वर्षा के कारण नदी के किनारे की चिकनी मिट्टी में आगे बढ़ते हुए भारतीय सेना के हाथी फिसलने लगे। भारतीयों के हाथी उनके पांवो और सूंडों पर पड़ने वाले शत्रु सेना के तीरों से भी घबराने लगे। पोरस की सेना के कुछ हाथी बिगड़कर पीछे हटने लगे। ये हाथी अपनी ही सेना को कुचलने लगे। ऐसे समय में जब भारत के धनुर्धारी, जो पैदल ही थे, शत्रुओं पर तीर चलाने को तत्पर हुए तो उन्हें भी वर्षा के कारण कठिनाई का सामना करना पड़ा।

इन्हीं परिस्थितियों में सिकन्दर की सेना के फुर्तीले घुड़सवार धर्नुधारियों ने भारतीय सेना पर तीरों की वर्षा करना प्रारंभ किया। युद्ध का रुख बदल गया। यूनानी भारतीयों पर भारी पड़ने लगे। लेकिन राजा पोरस ने होंसला नहीं खोया। एक ऊँचे हाथी पर बैठकर वह युद्ध का नेतृत्व करता रहा। उसके शरीर पर कई घाव हो गए, रक्त बहने लगा, लेकिन मातृभूमि की रक्षा के निमित वह प्राण समर्पित करने का संकल्प लेकर रणक्षेत्र में आया था। पोरस ने मुँह नहीं मोड़ा। तब तक जब तक वह मूर्छित सा नहीं हो गया। शत्रुओं ने राजा पोरस को घेर लिया और पकड़ लिया। बंदी बनाकर सिकन्दर के सामने लाया गया। इस समय अहंकार में सिकन्दर ने राजा पोरस से यह पूछा कि उसके (राजा पोरस के) साथ कैसा व्यवहार किया जाए, तो उत्तर में पोरस ने कहा जैसा एक राजा को दूसरे राजा के साथ करना चाहिए। पोरस का यह उत्तर सुनकर पहले तो सिकन्दर अवाक् रह गया। लेकिन भारत के उस वीर सपूत की निर्भीकता की सिकन्दर के मन पर छाप पड़ गई। सिकन्दर उसके साहस का कायल हो गया। उसने राजा पोरस को स्वतंत्र करते हुए उसका राज्याधिकार लौटा दिया। कुछ इतिहासकार सिकन्दर के इस व्यवहार के पीछे यह कूटनीति मानते हैं कि पोरस जैसे शक्तिशाली राजा से मित्रता स्थापित कर सिकन्दर शत्रु की तरफ से निश्चिंत होकर भारत में आगे बढ़ना चाहता था। सिकन्दर की इच्छा कुछ भी रही हो, किन्तु उसके व्यवहार ने राजा पोरस को प्रभावित किया और पोरस ने सिकन्दर से मित्रता कर ली।

सिकन्दर की सेना का स्थानीय विरोधः– उत्तरी पूर्वी पंजाब के छोटे राज्यों पर अधिकार करता हुआ सिकन्दर भारत के भीतरी भागों की तरफ आगे बढ़ने लगा, लेकिन व्यास नदी तक पहुंच कर सिकन्दर की सेना ने आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। वास्तविकता यह थी कि सिकन्दर के सैनिक लंबे समय से लड़ते– लड़ते थक चुके थे। उनमें से बहुत से बीमार भी होने लगे थे और आगे बीमारी के प्रकोप से घबराने लगे थे। अपने कुटुम्बियों से लंबे समय से अलग रहने के कारण उनमें घर लौट चलने की उत्सुकता भी बढ़ गई थी। यही नहीं, यूनानी सैनिकों को मगध के नन्द राज्य की सैनिक शक्ति की सूचनाएं भी मिलने लगी थी, जिससे वे डरने लगे थे, क्योंकि भारतीयों की वीरता का अनुभव वे राजा पोरस के साथ युद्ध में पहले कर चुके थे। इन्हीं कारणों से सिकन्दर के यूनानी सैनिक अब आगे न बढ़कर लौट जाना चाहते थे। यूनानी सैनिकों की ऐसी मनोदशा देखकर सिकन्दर ने उन्हें समझाने और उनमें उत्साह पैदा करने की खूब कोशिश की। लेकिन उत्साहहीन सैनिकों की मनोदशा के चलते मजबूर होकर उसे वापस लौटना पड़ा।

सिकन्दर का लौटनाः– सिकन्दर उन्नीस महीनों तक भारत में रहकर झेलम के मार्ग से वापस लौटा। इस समय भी उसने पंजाब को विजित किया। फिर वह लौटते हुए रावी और चिनाव के संगम स्थल पर पहुंचा। यहीं उसने शिबियों और अग्रेश्रृणियों पर आक्रमण किया। इन आक्रमणों में उस अग्रश्रृणियों के साथ कड़ा संघर्ष करना पड़ा। इसके पश्चात् सिकन्दर को मालवों और क्षुद्रकों के साथ जूझना पड़ा। मालवों और क्षुद्रकों ने सम्मिलित होकर सिकन्दर का सामना किया। इनके साथ संघर्ष में यूनानियों को घोर परेशानियाँ उठानी पड़ी। तब यूनानी सेना में फिर विरोध के लक्षण उभरने लगे। पर सिकन्दर ने उन्हें समझा बुझाकर मालवों और क्षुद्रकों से युद्ध के लिए तैयार किया और मालवों पर आक्रमण किया। मालवों ने कड़ा प्रतिरोध किया। उनके प्रतिरोध के आगे यूनानी हतप्रभ रह गए। एक बार तो स्वयं सिकन्दर घायल हो गया। तब अपने स्वामी की रक्षा के लिए यूनानियों ने प्राणप्रण से युद्ध किया। यूनानी सैनिक निरपराध बच्चों, स्त्रियों और पुरुषों को मारने लगे। इस क्रूरता से दुःखी होकर क्षुद्रकों ने मालवों को समझा कर सिकन्दर के सामने संधि का प्रस्ताव किया। सिकन्दर ने क्षुद्रकों के प्रस्ताव को स्वीकार किया और अपने एक विश्वास पात्र व्यक्ति फिलिप्स को वहां मालवों एंव क्षुदकों के राज्य में क्षत्रप के रूप में छोड़कर सिकन्दर अपने देश के लिए आगे बढ़ा। वह सिन्धु के मुहाने पर पहुँचा। यहाँ पर भी सिकन्दर को मेस्सिकेनस, सम्बोस तथा ऑक्सिकेनस राज्यों निवासियों से संघर्ष करना पड़ा। ईसा पूर्व 325 में सिकन्दर ने भारत छोड़ा। भारत छोड़ते समय उसने अपनी सेना के दो भाग किए। नियार्कस नामक उसके विश्वासपात्र सेनापति के नेतृत्व में उसने सेना के एक भाग को समुद्री मार्ग से यूनान के लिए रवाना किया। दूसरे भाग के साथ स्वयं काबुल होता हुआ ईसा पूर्व 324 के अंत में सिकन्दर ईरान के सूसा नगर में पहुंचा। यहां वह बीमार पड़ गया। उसे तीव्र ज्वर ने घेर लिया और यहीं ईसा पूर्व 323 में केवल बत्तीस वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई।

भारतीय यूनानी (इण्डो ग्रीक)– पश्चिमोत्तर भारत में अलेकजेंडर (सिकन्दर) का आक्रमण यूनान तथा भारत को किसी दृष्टि से निकट लाने में असफल रहा था। 323 ई.पू. में सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके सेनानायकों में प्रभुत्व के लिए संघर्ष हुआ। संघर्ष में सिकन्दर के सेनानायक सेल्यूकश निकेटर के उत्तराधिकारी के रूप में शासक एण्ट्रयोकस तृतीय ने भारत के विरूद्ध लगभग 306 ई.पू. में एक अभियान का नेतृत्व किया। हिन्दुकुश के पार करके उसने काबुल घाटी को पार किया और एक राजा सुभागसेन से उसका सामना हुआ। सुभागसेन को आत्म समर्पण करना पड़ा, इसी समय से भारत में बैक्ट्रियान यूनानी राज्य की शुरूआत मानी जाती है। क्योंकि हिन्दुकुश पर्वत के पार उत्तरी अफगानिस्तान एवं ईरान के आसपास का क्षेत्र

बैक्ट्रिया एवं पार्थिया दो भू–प्रदेशों के नाम से जाना जाता था। बैक्ट्रिया का क्षेत्र पश्चिमोत्तर क्षेत्र था जो बहुत उपजाऊ व सरसब्ज था और एण्टयोकस तृतीय यहीं का शासक था। यही बैक्ट्रियन यूनानी या यूनानियों की बैक्ट्रियन शाखा जिसने भारत के पश्चिमोत्तर को आधार बनाकर प्रवेश किया और अन्त में भारतीय समाज में घुल–मिलकर यूनानी जो भारतीय यूनानी अथवा इण्डो–ग्रीक के नाम से जाने गए।

एण्टयोकस तृतीय के पश्चात क्रमशः डेमेट्रियस, यूकेटाइड्ज, हेलियोक्लीस व अपोलोजेटम आये किन्तु यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं थे। यूनानी राजाओं में सबसे महान शासक मेनाण्डर (मिलिन्द) था।

मेनाण्डर (Manander)– स्ट्रवों ने माना है कि मेनाण्डर इण्डोयूनानी राजाओं में सबसे महान् था। पाली भाषा की पुस्तक ''मिलिन्दपन्ह'' या 'मिलिन्द के प्रश्नों' के अनुसार, मेनाण्डर कलसी गांव में उत्पन्न हुआ था, जो मेनाण्डर की राजधानी शाकल से 200 योजन दूर स्थित अलासण्ड द्वीप में स्थित था। शाकल पाकिस्तान में स्थित स्यालकोट है। भाग्यवश ''मिलिन्दपह्न'' में मेनाण्डर की राजधानी का यह विवरण दिया गया है : ''योणकों के देश में व्यापार का एक बहुत बड़ा केन्द्र है, एक शहर जिसका नाम शाकल है, सुहावने प्रदेश में स्थित है। वहाँ पानी की सुविधा है और पहाड़ियां भी हैं, कई उपवन, बाग, कुँज, झीलें और कुण्ड हैं, नदियों, पहाड़ों और जंगलों का स्वर्ग है। बुद्धिमान व्यक्तियों ने इसकी योजना बनाई और इसके निवासियों का अत्याचार से परिचय नहीं है क्योंकि सभी शत्रु और विपक्षी दबा दिए गए हैं। इसकी सुरक्षा सुदृढ़ है, कई बड़े–बड़े बुर्ज और दीवारें हैं, अनुपम दरवाजे और प्रवेशद्वार हैं और इसके मध्य में सफेद दीवार का राजदुर्ग है जिसके चारों ओर गहरी खाई है। इसकी गलियॉ, वर्गाकार क्षेत्र, चौराहे और मंडियॉ नियमित ढंग से बनी हैं। इसकी दुकानों में भरे कीमती पदार्थों की दुकानों में अच्छी तरह प्रदर्शित किया जाता है। इसमें कई तरह के शानदार भवन हैं जो हिमालय की चोटियों की तरह ऊँचे हैं। इसकी सड़कें हाथियों, घोड़ों, गाड़ियों और पैदल यात्रियों से भरी हैं और हर प्रकार के व्यक्तियों–ब्राह्मण, सामन्त, शिल्पी, सेवक आदि की वहाँ भीड़ लगी रहती है। प्रत्येक सम्प्रदाय के गुरूओं का वे ऊँचे नारों से स्वागत करते हैं और नगर में प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रमुख व्यक्ति रहते हैं। बनारसी मलमल, 'कोटुम्बर' पदार्थों और अन्य कई प्रकार के कपड़ों की बिक्री के लिए वहाँ दुकानें हैं। बाजारों से मीठी सुगन्धें आती हैं, वहाँ सब तरह के फूल और सुगन्धियाँ अच्छी तरह सजाकर रखी जाती है। आभूषण असंख्य हैं और हर प्रकार की कला के व्यापारियों की श्रेणियाँ अपना–अपना सामान सजाती हैं और चारों ओर फैलाती हैं।''

मिलिन्दपन्ह'' में उसे एक राजवंश से सम्बन्धित बताया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि वह साधारण व्यक्ति था। विवाह के कारण यह यूथिडेमस के वंश से सम्बन्धित हो; यह सम्भव है। प्रो0 रैप्सन का विचार था कि उसने डेमेट्रियस की पुत्री अगैथीक्लीया, अगैथीक्लीया की बहिन तथा अन्यों से विवाह

यूनानी शासक मेनाण्डर

महात्मा बुद्ध – गांधार कला

किया। उसका पुत्र स्ट्रैटो प्रथम मेनाण्डर की मृत्यु के समय नाबालिग था। उसकी रानी अगैथोक्लीया अपने पुत्र की बाल्यावस्था में राज्य–कार्य करती रही। यह निष्कर्ष मेनाण्डर के कुछ सिक्कों के अध्ययन पर आधारित था।

यूनानी लेखकों से ज्ञात होता है कि मेनाण्डर एक महान् विजेता था। कहा जाता है कि उसने सिकन्दर से भी अधिक राष्ट्रों पर विजय पाई। मेनाण्डर के कई प्रकार के सिक्कों और उनके प्राप्ति–स्थानों की विविधता से निष्कर्ष निकाला गया है कि वह कई राज्यों का शासक था और एक महान् विजेता भी था। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों से उसके बहुत से सिक्के प्राप्त हुए हैं। उसके सिक्के काठियावाड़ में भी प्रचलित थे।पंजकोर और स्वात नदियों के संगम से 20 मील पश्चिम की ओर स्थित वजीर जातीय प्रदेश से खरोष्ठी अभिलेखों के एक मंजूषा में रखे दो वर्ग मिले हैं। इनमें से एक अभिलेख में मेनाण्डर के राज्य का उल्लेख किया गया है। शाक्य मुनि बुद्ध के कुछ अवशेषों को पूजा के लिए मंजूषा में रख दिया गया और उसे पहले मेनाण्डर के एक सामन्त वियाकमित्र ने और फिर उसके पुत्र या पौत्र ने प्रतिष्ठित किया। इससे पेशावर प्रदेश और सम्भवतः ऊपरी काबुल घाटी पर मेनाण्डर के अधिकार का संकेत मिलता है। इस समय में तक्षशिला या पुष्करावती में कोई स्वतन्त्र यवन शासक नहीं था।

''मिलिन्दपन्ह'' में बताया गया है कि मेनाण्डर, बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। कहा गया है कि शुंग राजा पुष्यमित्र के अत्याचार से त्रस्त बौद्ध भिक्षुओं के लिए मेनाण्डर का शाकल स्थित दरबार आश्रय–स्थल बन गया। ''दिव्यावदान'' में कहा गया है कि पुष्यमित्र ने घोषणा की थी कि जो व्यक्ति शाकल के किसी बौद्ध भिक्षु का सिर उसे लाकर देगा, उसे एक सौ दीनार दिए जाऐंगे। मेनाण्डर एक कट्टर बौद्ध था इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसने बौद्ध भिक्षुओं को आश्रय दिया हो जिन पर शुंगों ने सम्भवतः अत्याचार किए थे। 'मिलिन्दपह्न' में मेनाण्डर अर्थात् मिलिन्द और बौद्ध विद्वान् भिक्षु नागसेन के बीच एक वार्तालाप दिया गया है। मेनाण्डर ने बौद्ध अध्यात्म शास्त्र और

दर्शन के सम्बन्ध में कई सूक्ष्म प्रश्न नागसेन से पूछे और सभी प्रश्नों का उसने सन्तोषजनक उत्तर दिया। परिणामस्वरूप मेनाण्डर बौद्ध बन गया।

हिन्द–यवन शासक मेनान्डर के सिक्के

विद्वान् एकमत से मेनाण्डर का राज्य डेमेट्रियस की मृत्यु के पश्चात् मानते हैं जो 165 ई0 पू0 में हुई, इसलिए मेनाण्डर पुष्यमित्र का बाद के समय का हो सकता है। ''मिलिन्दपन्ह'' में कहा गया है कि मेनाण्डर 'परिनिर्वाण' से 500 वर्ष पश्चात् जीवित रहा।प्रो0 रैप्सन ने ठीक कहा है कि एक महान् और न्यायप्रिय शासक के रूप में मेनाण्डर की ख्याति भारत तक ही सीमित नहीं थी। उसके लगभग दो शतियों पश्चात् प्लूटार्क ने यूनानियों को बताया कि सैनिक शिविर में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके अवशेषों की रक्षा के लिए किस प्रकार उसके साम्राज्य के नगरों में स्पर्धा हुई। रैप्सन ने लिखा है : ''इस प्रकार मेनाण्डर ने केवल एक महान् विजेता के रूप में ही नहीं बल्कि उपनिषदों में वर्णित कुरुवंशी जनमेजय और विदेह–शासक जनक की भांति एक दार्शनिक के रूप में भी ख्याति प्राप्त की।''

यूनानी आक्रमण का उद्देश्य एवं प्रभाव

सिकन्दर की जल्दी ही मृत्यु हो जाने के कारण यूनानी भारत में स्थायी बस्ती नहीं बसा सके। सिकन्दर के आक्रमण की तुलना में भारतीय यूनानियों की उत्तर – पश्चिम सीमान्त प्रदेशों पर अधिकार अधिक समय तक रहा था। बैक्ट्रियां के यूनानियों ने इस प्रदेशों पर लगभग दो शताब्दियों तक शासन किया और इसलिए सांस्कृतिक आदान–प्रदान के लिए यह समुचित समय था, यद्यपि भारतीय यूनानी शासन की देन उत्तर – पश्चिमी क्षेत्र तक ही मानी जाती रही है तथापि उसके भारतीय प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता है। वास्तव में यूनानी विशेषताएँ भारत में ही आत्मसात् होकर मुख्य धारा में विलीन हो गई।

मुद्रा (सिक्के) – भारतीय बैक्ट्रियनों के शासन का भारत में महत्वपूर्ण प्रभाव मुद्रा के क्षेत्र में पड़ा। यूनानी प्रभाव से पूर्व भारतीय चांदी के चिन्हित सिक्के तकनीकी रूप से कम श्रेष्ठ थे। इन सिक्कों पर किसी का नाम या तिथि नहीं लिखी होती थी। भारतीय यूनानी पहले शासक थे जिन्होंने सोने के ऐसे सिक्कों की ढ़लाई की जिन पर राजा का नाम, उपाधि और तिथि अंकित होती थी। निर्माण कला का श्रेष्ठता के कारण वह बेहतर होते थे। चूँकि यूनानी ग्रहणशील थे इसलिए वे कभी–कभी भारतीय मौद्रिक तकनीकी को अपनाकर भी प्रयोग करते थे।

कला और मूर्तिकला– के क्षेत्र में भी यूनानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ। भारतीय यूनानियों की भूमिका, सांस्कृतिक संबंधों के संदर्भ में इसलिए भी महत्वपूर्ण समझी जाती है कि उन्होंने उत्तर–पश्चिम भारत में हेलेनिस्टिक कला से परिचय कराया, जिसने बाद में गंधार कला शैली का रूप लिया। भारतीय और यूनानी मिश्रण से उत्तर – पश्चिम में कला की प्रसिद्ध गांधार शैली का विकास हुआ। भारतीय यूनानी शासन में खगोल शास्त्र, साहित्य, भवन निर्माण और धर्म के क्षेत्र में भी अपनी छाप छोड़ी। साथ ही नए जल और थल मार्गों के खुलने से भारत और यूनान के मध्य व्यापार और वाणिज्य का विस्तार हुआ।

*व्यापार–वाणिज्य–*_भारत रत्न, हाथी–दाँत मसाले और अच्छे वस्त्रों जैसी वस्तुओं की यूनान में काफी मांग थी जबकि भारतीय बाजार में भी यूनान से आने वाली विलास सामग्री और श्रृंगार–प्रसाधनों की भरमार थी। एक परम्परा के अनुसार राजा एटीओकस चतुर्थ ने लगभग 166 ई.सा. पूरे यूनान में एक प्रदर्शनी का आयोजन किया था। जिसमें भारत के मसाले और हाथी – दाँत में वस्तुएँ प्रदर्शित थी। समकालीन सिक्कों की एक बड़ी संख्या में कम से कम 30 भारतीय यूनानी शासकों के नाम मालूम हो जाते हैं। उत्तर में काबुल तथा दिल्ली के निकट मथुरा में मेनान्दर के सिक्के प्राप्त हुए हैं। भारतीय यूनानियों का इतिहास मुख्यतः इन्हीं सिक्कों की सहायता से लिखा गया है। इन सिक्कों पर यूनानी भाषा में अनुश्रुतियाँ अंकित है, बाद में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि भी मिलती है। इन प्रमाणों को समझने में कहीं–कहीं कठिनाई भी होती है, क्योंकि कुछ राजाओं के नाम एक से थे। इसलिए एक शासन के समय के सिक्कों को दूसरे से अलग करना आसान नहीं है। सिक्के, विशेषकर चाँदी के सिक्कों के ढालने की भारतीय यूनानी तकनीक कारीगरी का अच्छा उदाहरण है। इसका प्रभाव इस युग के कुछ स्थानीय शासकों द्वारा जारी किए हुए सिक्कों पर पड़ा और एक बड़े क्षेत्र में उनका प्रचलन हुआ। ये इस युग के बढ़ते हुए व्यापार संबंधों पर प्रकाश डालते हैं।

सांस्कृतिक प्रभाव व विलिनीकरण– भारत में इण्डो–बैक्ट्रियन राज्य के विषय में डॉ. जे.एन. बैनर्जी का विचार है कि भारत की द्वितीय यूनानी विजय सिकन्दर की विजय से अधिक महत्वपूर्ण थी। दो शताब्दियों तक भारतीयों तथा यूनानियों में पर्याप्त सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे और दोनों की एक दूसरे पर प्रतिक्रिया हुई। यह केवल यूनानी सभ्यता का भारतीय सभ्यता पर तथा भारतीय सभ्यता का यूनानी सभ्यता पर प्रभाव मात्र नहीं था। भारतीयों की कई धार्मिक धारणाओं और आदर्शों को यूनानी शासकों ने अपनाया। असंख्य यूनानी भारतीय धर्मों के अनुयायी बन गए। यूनानियों ने क्रमशः भारतीय ढ़ंग को अपना लिया। समय के साथ वे भारतीय भूमि की उपज ही बन गए। और अन्त में यूनानी विशेषताएँ भारत में ही आत्मसात होकर भारतीय समाज व संस्कृति की मुख्यधारा में विलीन हो गई।

शक (सीथियन)

ये मूल रूप से मध्य एशिया के निवासी थे, इनको पश्चिमी चीन की यू–ची जाति ने इनकी मातृभूमि मध्य एशिया से उखाड़ फेंका था। तब से ही इन्होंने अपना भाग्य भारत की ओर आजमाया।

यूनानियों के बाद भारत में मध्य एशिया से आने वाली दूसरी विदेशी जाति शक थी। इनका निवास स्थान सीथिया नामक प्रदेश था और वहाँ रहने के कारण ही इनको सीथियन कहा गया। पहली सदी ईसवी पूर्व में बैक्ट्रिया में यूनानी राज्यों के पराभव के समय कुषाणों से पराजित शक पार्थियनों को पराजित करते हुए बोलन दर्रे को पार करते हुए सिन्धु घाटी और पश्चिमोत्तर भारत में बस गये। भारत में शकों का प्रारंभिक राजनीतिक इतिहास धुँधला है फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भारत में शकों की पाँच शाखाओं ने उस समय अपने राज्य कायम किए थे। शकों की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित सिक्के और अन्य स्त्रोत उपलब्ध हैं। एक शाखा अफगानिस्तान में थी जिसकी राजधानी या केन्द्र कपिशा था। दूसरी शाखा पंजाब में बसी जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। तीसरी शाखा मथुरा में स्थापित हुई जिसने वहाँ दो शताब्दियाँ तक शासन किया। चौथी शाखा ने पश्चिमी भारत में अपना राज्य स्थापित किया जो चौथी सदी के आरम्भ तक विद्यमान रहा जिसकी राजधानी उज्जैन थी। शकों की पाँचवी शाखा ने ऊपरी दक्कन में अपना राज्य स्थापित किया था, जिसकी राजधानी नासिक थी।

उत्तर–पश्चिम भारत में शकों को अपने सैनिक अभियानों में न तो भारतीय शासकों का और न ही जनता के प्रतिरोध का कठोर सामना करना पड़ा। लेकिन भारतीय साहित्य और परम्परा में 56 ई.पू. पूर्व में उज्जैन के राजा विक्रमादित्य द्वारा शकों पर उसकी निर्णायक विजय का उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक विजय की स्मृति में ही 57 ईसवी पूर्व में विक्रम संवत् का प्रारम्भ हुआ जो भारतीय ज्योतिष गणना का प्रामाणिक स्रोत बना। शकों पर विक्रमादित्य की इस ऐतिहासिक विजय ने उसे इतनी प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता प्रदान की विक्रमादित्य का नाम एक महान् उपाधि में प्रतिष्ठित हो गया, प्रत्येक राजा इस उपाधि को धारण करने के लिये लालायित रहता था। प्रतिष्ठा पराक्रम के महान् प्रतीक के रूप में भारतीय राजा 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करने की प्रथा प्रचलित हुई थी। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाले राजाओं में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त रहा है। पाँचों शाखाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण नासिक व उज्जैन शाखा थी। मौलिक रूप से शक मध्य एशिया के रहने वाले थे और धीरे–धीरे उन्होंने पश्चिमी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया। उज्जैन और नासिक के शक सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं, नासिक के शकों में सर्वप्रसिद्ध नहपान था उसने सातवाहनों को पराजित कर उनके एक बड़े भू–भाग पर अधिकार कर लिया था। किन्तु 124 ई. में गौतमीपुत्र शातकर्णी ने नहपान का वध कर दिया था। जूनागढ़ के शिलालेखों से उसकी सैन्य सफलताओं तथा सुदर्शन झील की मरम्मत की जानकारी मिलती है। उसकी मृत्यु के बाद उज्जैन के शकों का पतन हो गया।

शक शासक रूद्रदमन (Rudradamana)

शक शासकों के वंशजों में जयदमन के पुत्र रूद्रदमन प्रथम (130–150 ईसवी) उज्जैन के शक शासकों में सबसे प्रख्यात था। भारत में स्थापित शकों के विभिन्न राज्यों में से केवल पश्चिमी भारत (गुजरात) में स्थापित शाखा का ही चार सदियों तक शासन विद्यमान रहा। गुजरात के बन्दरगाहों से होने वाले विदेशी व्यापार ने उनको भारी आर्थिक समृद्धि प्रदान की, परिणामस्वरूप उन्होंने बड़ी संख्या में चाँदी के सिक्के चलाये। यहाँ के शक शासकों में सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त शासक रूद्रदमन प्रथम था। इस विषय में सर्वाधिक जानकारी उसके स्वयं के जूनागढ़ अभिलेख से मिलती है। यह अभिलेख शक संवत 72 अर्थात् 150 ईसवी में लिखा गया था।

विदेशी होते हुए भी उसने सबसे पहले विशुद्ध संस्कृत भाषा में इतना लम्बा अभिलेख (जूनागढ़) जारी किया था। इससे यह बात साफ है कि रूद्रदमन ने संस्कृत को बढ़ावा दिया। यह उसी शिला पर उत्कीर्ण है जिस पर अशोक के चौदह शिलालेखों का एक सेट और गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के दो लेख भी उत्कीर्ण हैं।

महाक्षत्रप रूद्रदामन कनिष्क की बिना सिर वाली मूर्ति

सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार – जूनागढ़ लेख में रूद्रदमन द्वारा सुदर्शन झील के जीर्णोद्धार के विषय के साथ रूद्रदमन की उपलब्धियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें बताया गया है कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के गर्वनर पुष्यगुप्त ने गिरनार के समीप जनकल्याण हेतु सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। अशोक के राज्यकाल में सिंचाई के लिए इसी झील से अनेक नहरें निकाली गयी थी। अनेक शताब्दियों तक यह झील सौराष्ट्र के किसानों के लिए सिंचाई का महत्वपूर्ण स्रोत थी। रूद्रदमन के शासनकाल में अतिवृष्टि के कारण सुदर्शन झील का बाँध टूट गया तथा दरार आ गई। इसका पुनर्निर्माण बहुत कठिन व खर्चीला था, किन्तु रूद्रदमन ने प्रजा की भलाई के लिए सचिवों के विरोध के बावजूद अपने निजी कोष से विशाल धनराशि व्यय करके बांध का पुनर्निर्माण कराया तथा प्रजा पर कोई अतिरिक्त कर नहीं लगाया। सुदर्शन झील के जीर्णोद्धार का यह कार्य उस समय के सौराष्ट्र प्रान्त के गवर्नर सु–विशाख द्वारा सम्पन्न कराया गया था।

साम्राज्य विस्तार– जूनागढ़ अभिलेख में रूद्रदामन की विजयों का उल्लेख यूं मिलता है कि उसने अकर (पूर्वी मालवा), अवन्ति (पश्चिमी मालवा), अनूप (नर्मदा तट प्रदेश), त्रिवृत (उत्तरी काठियावाड़ व उसकी राजधानी आनन्दपुर), सुराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड़), मरू (मारवाड़), कच्छ सिन्धु (निचली सिन्धुघाटी का पश्चिमी क्षेत्र), पूर्वी तट का प्रदेश, कुकुर (पश्चिमी मध्यभारत का प्रदेश), निषाढ (विन्ध्याचल), उत्तरी कोंकण और अरावली पर्वतमाला के प्रदेश को जीता था। नासिक अभिलेख के अनुसार विजीत प्रदेश गौतमीपुत्र शातकर्णि के थे। अतः निश्चित रूप से ये प्रदेश रूद्रदामन ने गौतमीपुत्र के किसी वंशज से छीने होंगे। जो भी हो रूद्रदामन के साम्राज्य में सिन्धु–सौवीर (मुलतान सिन्धु नदी के मुहाने तक का प्रदेश), मालवा, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरी कोंकण, पश्चिमी राजस्थान और सिन्ध के प्रदेश सम्मिलित थे।

शासन व्यवस्था– जूनागढ़ लेख से रूद्रदमन के प्रशासन पर भी प्रकाश पड़ता है। उसका विशाल साम्राज्य प्रान्तों में विभक्त था, जिसका प्रशासन प्रान्तीय शासकों के अधीन था। सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार सौराष्ट्र के प्रान्तीय गवर्नर पहलव जातीय सुविशाख द्वारा सम्पन्न किया गया था। राजा को राज कार्य में सहायता के लिए मन्त्रिपरिषद थी। शासन–प्रबन्ध में परामर्श देने वाले मन्त्रियों को सचिव' और राजाज्ञाओं और नीतियों को क्रियान्वित करने वाले अधिकारियों को 'कर्मसचिव' कहा जाता था अमात्य (मन्त्रियों) के गुणों का वर्णन सुविशाख की प्रशंसा करते हुए किया गया है। उसकी व्यवस्था एवं कर प्रणाली धर्म आधारित थी।

व्यक्तित्व– जूनागढ़ अभिलेख रूद्रदामन के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों को स्पष्ट करता है। इस लेख में उसके व्यक्तित्व का जो पक्ष सर्वाधिक उभरा, वह है उसकी जन कल्याण की भावना। उसने प्रजा के लिए अपने मन्त्रियों के विरोध के बावजूद अपने निजी कोष से भारी धन व्यय करके सुदर्शन झील का पुननिर्माण करवाया था। उसने बॉध के लिए प्रजा से कोई अतिरिक्त या अनुचित कर नहीं लिया। वह उच्च आदर्शों का पालन करने वाला प्रजावत्सल राजा था। वह सदैव शरणागत की रक्षा करने वाला और युद्ध के अतिरिक्त किसी का भी वध न करने की प्रतिज्ञा लेने वाला दयालु व्यक्ति था। उसने अपने प्रजाजनों को डाकुओं, जंगली पशुओं व रोगों से भयमुक्त किया। वह एक कुशल सेनानायक और योद्धा था। वह शस्त्र व शास्त्र दोनों विद्याओं में पारंगत था। वह संगीत व शास्त्रों का ज्ञाता, संस्कृत व संस्कृति का संरक्षक, काव्यशास्त्र का मर्मज्ञ, शब्दार्थ (व्याकरण), न्याय (तर्कशास्त्र) का ज्ञाता तथा हाथी, घोड़े रथादि के संचालन एवं तलवार, ढाल आदि के युद्ध में प्रवीण था। इन गुणों के साथ–साथ वह अद्भुत शारीरिक सौन्दर्य का स्वामी भी था। उसके सिक्कों से इसकी पुष्टि होती है। निष्कर्षतः रूद्रदामन बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का धनी था और अपने स्वतंत्र शासन के बावजूद ''महाक्षत्रप'' की उपाधि को उसी प्रकार धारण किये रहा जैसे पुष्यमित्र शुग सम्राट होते हुए भी सेनापति कहा जाता रहा। उसका व्यक्तित्व इस बात का भी प्रमाण है कि रूद्रदमन व उसके उत्तरोत्तर शासकों का इस समय तक लगभग भारतीयकरण हो चुका था। रूद्रदमन के उत्तराधिकारी कमजाकर शासक थे। उसके उत्तराधिकारी के रूप में दामजाद का नाम आता है।

कुषाण

यद्यपि कुषाणों की उत्पत्ति पर इतिहासकार एकमत नहीं है, फिर भी इस सम्बन्ध में मान्यता प्राप्त मत यह है कि कुषाण पश्चिमी चीन के कान–सू प्रान्त के रहने वाली 'यू–ची' जाति से

कुषाण साम्राज्य

सम्बन्धित थे। लगभग 165 ई.पू. में हूणों द्वारा इस जनजाति को इनकी मातृभूमि से खदेड़ दिये जाने पर यू–ची नये स्थान की तलाश में विभिन्न संघर्षों के बाद आक्सस नदी घाटी के ताहिया (बैक्ट्रिया) प्रदेश में पहुँचे। ताहिया में उस समय शकों का शासन था। यू–ची जाति ने शकों को परास्त कर बैक्ट्रिया पर अधिकार कर लिया। यहीं पर रहते हुए यू–ची पाँच शाखाओं में विभक्त हो गए। इन शाखाओं में कुषाण शाखा सर्वाधिक शक्तिशाली थी, अतः उसने शेष चारों शाखाओं पर विजय प्राप्त करके उनके राज्यों को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। इसी कारण यू–ची के स्थान पर कुषाण शब्द का प्रयोग होने लगा। कुषाण वंश का संस्थापक कजुलकेडफिसिज था जिसका राज्य बैक्ट्रिया व गान्धार प्रदेश में था। उसका उत्तराधिकारी विम कडफिस था जिसने अपने साम्राज्य का विस्तार भारतीय प्रदेश मथुरा तक में किया था, साथ ही महाराज की उपाधि धारण की थी। कुषाणों के प्रारंभिक इतिहास पर चीनी इतिहास ग्रंथ बहुमूल्य प्रकाश डालते हैं। इसके अलावा भारतीय साहित्य तथा पुरातात्विक सामग्री–मुद्राओं, अभिलेखों, मूर्तियों और खुदाई में प्राप्त प्राचीन स्मारकों से भी कुषाण वंश के इतिहास पर व्यापक एवं प्रामाणिक जानकारी मिलती है।

कनिष्क (78–101 ई.)

कनिष्क कुषाण राजाओं में सबसे महान् था, किन्तु उसकी सिंहासनारोहण की तिथि के विषय में विद्वान एकमत नहीं है। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार कनिष्क के राज्याभिषेक की

तिथि 78 ई. मानी गई है। कनिष्क की महानता का अनुमान इस बात से भली–भांति लग जाता है कि उसका साम्राज्य पश्चिम में आक्सस नदी से पूर्व में गंगा नदी तक मध्य एशिया में खुरासन से लेकर उत्तर–प्रदेश में वाराणसी तक फैला था।

कनिष्क की सैनिक उपलब्धियाँ

कनिष्क कुषाण वंश का सबसे प्रतापी शासक था। कनिष्क के समय में कुषाण सत्ता अपने शिखर पर पहुँच गई थी। कनिष्क एक महान् विजेता, कुशल प्रशासक एवं कला प्रेमी शासक था। कनिष्क जब सिंहासनारूढ़ हुआ तब उत्तराधिकार में उसे एक छोटा सा राज्य मिला था। जिसमें अफगानिस्तान, सिन्ध का भाग, पार्थिया, बैक्ट्रिया और पंजाब का कुछ भाग शामिल था। उसके पूर्व शासक चीनी शासकों द्वारा पराजित कर दिए गए थे और विम कदफिसस की मृत्यु के बाद उत्पन्न अराजकता के कारण कुषाण राज्य शिथिल एवं अव्यवस्थित हो गया था। विम की मृत्यु के समय कनिष्क उन कुषाण सरदारों में से एक था, जो भारत में अपना भाग्य आजमा रहे थे।

1. *पार्थिया पर अधिकार –* कनिष्क व पार्थिया के शासक के मध्य हुए युद्ध की जानकारी चीनी स्रोतों से मिलती है। चीनी साहित्य से पता चलता है कि पार्थिया के शासक ने कनिष्क पर आक्रमण किया था। पार्थिया के शासक द्वारा कुषाण साम्राज्य पर आक्रमण करने के दो कारण थे। प्रथम तो यह कि व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश बैक्ट्रिया पर वह अधिकार करना चाहता था। दूसरा कारण यह था कि एरियाना प्रदेश पर पहले पार्थिया का अधिकार था, किन्तु बाद में कुषाणों ने इस पर अधिकार कर लिया था, अतः पार्थिया का शासक एरियाना प्रदेश पर पुनः अधिकार करना चाहता था। डॉ. स्मिथ की मान्यता है कि 'कनिष्क ने पार्थियनों के मूर्ख राजा संभवतया खुसरो को हराया था।' इस युद्ध के फलस्वरूप सम्पूर्ण पार्थिया प्रदेश कुषाण राज्य का अंग बन गया।

2. *पाटलिपुत्र (मगध) को जीतना –* चीनी और तिब्बती लेखकों के वर्णन से पता चलता है कि कनिष्क ने साकेत (अयोध्या) और पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया था। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार कनिष्क ने पाटलिपुत्र के राजा को हराकर उसमें दण्डात्मक कर की मांग की थी और वह न दे पाने पर कनिष्क बुद्ध का एक काष्ठ निर्मित भिक्षापात्र तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष को पाटलिपुत्र से अपने साथ लेकर आया था। सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार मगध राज्य से सातवाहनों के शासन का अंत करने का श्रेय कनिष्क को ही है।

कुछ विद्वानों ने बंगाल व उड़ीसा में कुषाणों की मुद्राएँ मिलने के आधार पर बिहार के आगे बंगाल व उड़ीसा पर भी कनिष्क का अधिकार बताया है।

3. *कश्मीर पर विजय –* कनिष्क को कश्मीर बहुत पसन्द था। डॉ. स्मिथ के अनुसार कनिष्क को अपने राज्यकाल के प्रारंभिक वर्षों में भी कश्मीर विजय सम्पन्न करने का श्रेय दिया जा सकता है। किन्तु कश्मीर के शासक के साथ उसके युद्ध का विवरण उपलब्ध नहीं है। विभिन्न प्रमाणों से कश्मीर पर कनिष्क के अधिकार की पुष्टि होती है। कश्मीर के प्राचीन इतिहासकार कल्हण ने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक 'राजतरंगिणी' में कनिष्क को कश्मीर का शासक बताया है। कनिष्क ने कश्मीर में ही बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति बुलाई थी जिसमें पाटलिपुत्र से लाये गये प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। कनिष्क ने कश्मीर में अनेक विहारों का निर्माण कराया और 'कनिष्कपुर' नगर बसाया, जो संभवत् आधुनिक बारामूला के समीप कानीरपोर ;Kaniapor) ग्राम है।

4. *उज्जैन पर विजय –* माना जाता है कि कनिष्क ने उज्जैन के शक शासकों के विरूद्ध भी युद्ध किया था। अधिक संभावना यह है कि शक क्षत्रप चष्टन ही वह शासक था जिसे कनिष्क ने परास्त किया था। इस युद्ध के परिणामस्वरूप पश्चिमी भारत के शकों ने कनिष्क की प्रभुता को स्वीकार कर लिया और मालवा के कुछ भाग पर कनिष्क का अधिकार स्थापित हो गया था।

5. *मध्य एशिया की विजय –* चीनी इतिहास ग्रंथों से पता चलता है कि लगभग 90 ई. में कनिष्क ने हानवंश के सेनापति पान–चाओ, (जिसने चीनी तुर्किस्तान को अपने अधिकार में ले लिया था), के विरूद्ध शक्तिशाली सेना भेजी। कनिष्क को इस युद्ध में महत्वपूर्ण विजय मिली, जिसके परिणामस्वरूप मध्य एशिया (चीनी तुर्किस्तान) के काशगर, यारकन्द एवं खोतान पर कनिष्क का अधिकार हो गया।

6. *चीन पर आक्रमण –* चीनी तुर्किस्तान पर अधिकार हो जाने से कनिष्क का साम्राज्य उत्तर में पामीर की पहाड़ी तक फैल गया था और इसके फलस्वरूप कुषाण साम्राज्य की सीमाएँ चीन के हान साम्राज्य की सीमाओं को छूने लग गई थी। चीनी साहित्यिक स्रोतों एवं ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि इस समय कनिष्क ने पामीर के उत्तर में अपने साम्राज्य विस्तार के लिए एक शक्तिशाली सेना भेजकर चीन पर आक्रमण किया था।

चीनी साहित्य के अनुसार कनिष्क ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु चीन के हानवंशी सम्राट (हो–ति) के पास अपना दूत भेजकर चीनी राजकुमारी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की थी। चीन के सेनापति पान–चाओ ने इसे चीनी सम्राट का अपमान समझते हुए कुषाण दूत को बन्दी बना लिया। इसकी सूचना मिलने पर कनिष्क ने अपने सेनापति 'सी' के नेतृत्व में 70,000 घुड़सवारों की एक शक्तिशाली सेना चीनी साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिये भेजी किन्तु खोतान तक पहुँचने पर खराब मौसम के कारण सेना का एक बड़ा भाग नष्ट हो गया। अतः पान–चाओ ने उसे आसानी से हरा दिया और कनिष्क को प्रतिवर्ष चीनी शासक को कर देने के लिए विवश किया। इस पराजय की पुष्टि एक किंवदन्ती से भी होती है जिसके अनुसार अपनी मृत्यु के कुछ पूर्व कनिष्क ने खेदपूर्वक कहा था, ''मैंने तीनों दिशाओं को अपने अधीन कर लिया है केवल उत्तरी दिशा के लोग ही आत्मसर्पण के लिए नहीं आए हैं।''

ह्वेनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि कुछ समय पश्चात् कनिष्क ने अपनी पराजय का प्रतिशोध ले लिया। ह्वेनसांग के अनुसार ''कनिष्क का साम्राज्य सुंग–लिन पर्वत के पूर्व (खोतान, काशगर, यारकन्द) में भी विस्तृत था तथा पीली नदी के पश्चिम में रहने वाली जातियाँ (चीनी) उससे भयभीत हो गई और उन्होंने अपने दो राजकुमारों को कनिष्क के दरबार में बन्धक

के रूप में भेजा था।'' एक विजेता के रूप में कनिष्क की यह महान् विजय थी।

7. पेशावर पर चढ़ाई– कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरुषपुर या वर्तमान पेशावर में स्थापित की। यह उसके साम्राज्य का केन्द्रवर्ती स्थान था, क्योंकि साम्राज्य मध्य एशिया तक फैला हुआ था। कनिष्क ने अपनी राजधानी को कई श्रेष्ठ स्मारकों, सार्वजनिक भवनों और बौद्ध विहारों से सुसज्जित किया।

कुषाणों का साम्राज्य विस्तारः– इस प्रकार विभिन्न विजयों के द्वारा कनिष्क में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उपर्युक्त विजय के अलावा मुद्रा, अभिलेख और साहित्यिक स्रोतों से उसके साम्राज्य की सीमाएँ निर्धारित की जा सकती है। कौशाम्बी, सारनाथ, मथुरा से प्राप्त उसके अभिलेख यह संकेत देते है कि शासक के रूप में वह मूलतः पूर्वी प्रदेश से सम्बन्धित था तथा सम्पूर्ण उत्तर पर उसका अधिकार था। काशी तथा सारनाथ उसके साम्राज्य के इस भाग के केन्द्र स्थल थे। सिन्ध व पंजाब से प्राप्त उसके लेख वहॉ पर उसके अधिकार की पुष्टि करते हैं। चीनी स्रोत, गान्धार पर उसका अधिकार प्रमाणित करते हैं। मध्य प्रदेश के कुछ स्थानों से भी कनिष्क की मुद्राएँ और मथुरा शैली की मूर्तियाँ मिली है। इस प्रकार कनिष्क का साम्राज्य पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम खुरासान तथा उत्तर में पामीर से लेकर दक्षिण में कोंकण प्रदेश तक विस्तृत था।

प्रशासन – डॉ. बी. एन. पुरी के अनुसार कुषाण निरंकुश शासक थे, कनिष्क का साम्राज्य विशाल था, किन्तु उसकी शासन व्यवस्था के विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। यूनानियों एवं शकों की भांति कनिष्क का शासन क्षत्रप प्रणाली पर आधारित था। सारनाथ के अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसका शासन प्रान्तीय क्षत्रपों के द्वारा होता था। एक की राजधानी मथुरा व दूसरे की संभवतः काशी थी। मथुरा में महाक्षत्रप खरपल्लन और काशी में वनस्पर प्रान्तीय शासक थे। इस शासन का स्वरूप बहुत कुछ सैनिक था और इसका संगठन बहुत मजबूत नहीं था। ''दण्डनायक और महादण्डनायक पद कुषाण प्रशासकीय मशीनरी की कड़ी थे।

बौद्ध धर्म का पोषक कनिष्क

भारतीय इतिहास में कनिष्क की प्रसिद्धि एक महान् विजेता के साथ ही बौद्ध धर्म के महान संरक्षक के रूप में रही है। बौद्ध साहित्य में कनिष्क का उल्लेख दूसरे अशोक के रूप में किया गया है, जिसके प्रोत्साहन एवं संरक्षण के कारण बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। बौद्ध धर्म अपनाने के पूर्व कनिष्क क्रमशः ईरानी, यूनानी, एवं हिन्दू देवताओं में विश्वास करता रहा था। इसका प्रमाण यह है कि कनिष्क के प्रारम्भिक सिक्कों पर ईरानी देवता 'मिहिर', अग्नि, अहुरमज्दा, यूनानी देवताओं हेलियोस, हैरेक्लीज तथा हिन्दू देवताओं सूर्य, चन्द्र, शिव आदि के चित्र मिले हैं। उसकी मुद्राओं पर बुद्ध के चित्र भी मिलते हैं। अधिकांश इतिहासकारों की मान्यता है कि पाटलिपुत्र की विजय के साथ लाये गये प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष से प्रभावित होकर कनिष्क ने उसी से बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी। शीघ्र ही कनिष्क एक उत्साही बौद्ध बन गया और अपने धर्म की अभिवृद्धि में वह अशोक के चिन्हों पर चल पड़ा। उसने बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्रदान कर कनिष्कपुर, पुरूषपुर, मथुरा व तक्षशिला में स्तूप और विहार बनवाए। विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये बौद्ध भिक्षुओं को मध्य एशिया, चीन, तिब्बत, जापान आदि देशों में भेजा। राजतरंगिणी में लिखा है कि कनिष्क ने बौद्ध धर्म का प्रचार किया। ह्वेनसांग ने भी कनिष्क को बौद्ध धर्म का महान् संरक्षक एवं प्रचारक बताया है। कनिष्क द्वारा चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि कनिष्क बौद्ध था और महायान शाखा के प्रसार के लिए उसने प्रयत्न किए। बौद्ध होते हुए भी कनिष्क ने अन्य धर्मों का आदर किया और धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पालन किया जो उसके सिक्कों से प्रमाणित होती है।

बौद्ध धर्म का विभाजन व चतुर्थ बौद्ध संगिति –

संगीति कनिष्क के शासनकाल की एक उल्लेखनीय घटना है। बौद्ध धर्म में उपस्थित विवादास्पद सिद्धान्तों का निर्णय करने के उद्देश्य से कनिष्क के शासनकाल में चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन कश्मीर के 'कुण्डलवन' नामक विहार में किया गया था। लगभग 500 बौद्ध विद्वानों ने इसमें भाग लिया था। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुमित्र इसके अध्यक्ष और अश्वघोष उपाध्यक्ष थे। छः माह तक चले इस सम्मेलन में सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य की सूक्ष्मता से जॉच की गई तथा त्रिपिटकों पर टीका लिखकर उसे सम्पूर्ण रूप से एक ग्रन्थ में संकलित कर लिया गया, जिसका नाम 'महाविभाष' रखा गया। महाविभाष को बौद्ध धर्म का विश्व कोष कहा जाता है। सभी टीकाओं को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कर विशेष रूप से निर्मित एक स्तूप में रखा गया। तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार बौद्ध सभा में बौद्ध धर्म के तत्कालीन 18 स्कूलों के मतभेदों का निवारण किया और इन सभी स्कूलों को धर्म–परायण स्वीकार कर लिया गया।

चतुर्थ बौद्ध संगीति का एक उल्लेखनीय परिणाम बौद्ध धर्म का हीनयान एवं महायान शाखा में विभक्त होना था। जन साधारण में तथा विदेशों में प्रसार के लिए इस समय बौद्ध धर्म के नियमों व सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया। इसमें मूर्ति–पूजा, स्वर्ग, धार्मिक क्रियाएँ आदि को स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार बौद्ध धर्म की एक नवीन शाखा का जन्म हुआ जिसे 'महायान' कहा गया जबकि मूल बौद्ध धर्म को हीनयान कहा जाने लगा। कनिष्क ने बौद्ध धर्म की महायान शाखा को राजधर्म के रूप में मान्यता दी। हीनयान में बुद्ध केवल महापुरूष थे, जबकि महायान में बुद्ध को ईश्वरीय अवतार समझकर उनकी मूर्ति–पूजा शुरू हो गई। हीनयान में सत्कर्मों पर बल दिया था जबकि महायान में बुद्ध एवं बोधिसत्वों की पूजा कर बल दिया जाने लगा। हीनयान में पाली भाषा का प्रयोग किया जाता था किन्तु महायान में उसका स्थान संस्कृत भाषा ने ले लिया। बौद्ध धर्म की इस नई शाखा महायान के उदय के कारण बौद्ध धर्म का विकास तेजी से हुआ क्योंकि इसके सिद्धान्त सरल थे जिनका पालन जनसाधारण में एक गृहस्थ व्यक्ति भी सरलतापूर्वक कर सकता था। अन्य धर्मों के समान मूर्ति–पूजा का प्रचलन होने से महायान धर्म की लोकप्रियता बढ़ गई। कनिष्क द्वारा महायान को राजधर्म घोषित करने से मध्य एशिया में उसके विशाल साम्राज्य

में महायान के विकास में पर्याप्त सुविधा हुई होगी।

कला व साहित्य की उन्नति

कनिष्क केवल एक महान् विजेता ही नहीं वरन् उच्च कोटि का विद्वान एवं कला प्रेमी सम्राट था। उसने अनेक बौद्ध विहार एवं स्तूप बनवाकर अपने कला प्रेम का परिचय दिया। किन्तु उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन मूर्तिकला के क्षेत्र में थी। उसके मुख्य स्मारक तथा कलाकृतियां पेशावर, मथुरा, कनिष्कपुर और तक्षशिला में पाई गई है। तक्षशिला का सिरमुख नगर उसी ने स्थापित किया, जिसमें एक बड़ा भवन व विहार था। मथुरा उसके समय एक महान कला केन्द्र बन गया, यहीं से कनिष्क की एक सिर रहित मूर्ति प्राप्त हुई है जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। मूर्ति–निर्माण और स्थापत्य की दृष्टि से कनिष्क के शासनकाल में तीन विभिन्न केन्द्रों में तीन प्रमुख शैलियों का विकास हुआ– मथुरा, अमरावती एवं गान्धार। किन्तु महायान के उदय से मूर्तिकला में एक नया मोड़ आया। सीमान्त प्रदेश गान्धार में यूनानी प्रभाव के कारण बुद्ध की मूर्तियों में यूनानी देवताओं का प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा, इस कारण इस कला को 'इण्डो–ग्रीक' अथवा 'ग्रीको बुद्धिष्ट' कला भी कहते हैं। किन्तु बुद्ध की इन मूर्तियों का निर्माण मुख्यतः गान्धार प्रदेश में होने के कारण इस कला का नाम 'गान्धार कला' पड़ा। इस प्रकार कला में कला की एक नवीन शैली 'गान्धार शैली' का आर्विभाव कनिष्क के शासनकाल की एक बड़ी देन थी।

कनिष्क की राजसभा में अनेक उच्चकोटि के दार्शनिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यकार रहते थे। कनिष्क के दरबार का सबसे महान् व्यक्ति प्रसिद्ध कवि अश्वघोष था जिसने संस्कृत में 'बुद्धचरित' नामक महाकाव्य की रचना कर उसे अमर कृति बना दिया था। 'सौदरानन्द महाकाव्य, 'सूत्रालंकार' और 'सारीपुत्र प्रकरण' उसकी अन्य रचनाएँ थी। शून्यवाद एवं सापेक्षवाद का प्रवर्तक नागार्जुन कनिष्क के दरबार की एक अन्य महान् विभूति था। वह केवल दार्शनिक ही नहीं, वैज्ञानिक भी था। उसने अपनी पुस्तक 'माध्यमिक सूत्र' में सापेक्षता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उसे ही भारतीय आइंस्टीन कहा गया है। चरक कनिष्क का राज्य वैद्य था उसकी रचना 'चरक संहिता' आयुर्वेद की अमूल्य निधि है। वसुमित्र, पार्श्व एवं संघरक्षक कनिष्क के समय के अन्य प्रसिद्ध विद्वान थे। कनिष्क के काल में संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में आशातीत उन्नति हुई। उसके दरबार का एक मंत्री 'मंथर' प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एवं कुशाग्र बुद्धि था।

मुद्राः– कुषाण युग के सिक्के बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं कनिष्क प्रथम, हुविष्क तथा वासिस्क ने सोने तथा ताँबे के सिक्के चलाए। उन्होंने चाँदी के सिक्के नहीं चलाए। कुषाण सिक्कों का एक रूचिकर लक्षण यह है कि कुषाण साम्राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के देवताओं को कुषाण सिक्कों पर अंकित किया है।

निर्माता कनिष्कः– कनिष्क महान निर्माता भी था, उसके मुख्य स्मारक तथा कलाकृतियाँ पेशावर, मथुरा, कनिष्कपुर और तक्षशिला में पाई गई है। तक्षशिला के मिरमुख नगर उसी का स्थापित किया हुआ था। जिसमें बड़ा भवन, विहार और अन्य भवन थे। मथुरा उसके समय में एक महान कला केन्द्र बन गया। इस समय का एक मुख्य अवशेष कनिष्क की सिर रहित एक मूर्ति है।

विज्ञान की उन्नतिः– जैसा कि हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि कनिष्क शिक्षा एवं साहित्य का महान् संरक्षक था, फलस्वरूप उसके काल में साहित्य की विविध विधाओं का सर्वांगीण विकास हुआ। इस काल में पहली बार संस्कृत लेख लिखे गये। अश्वघोष, भास और शूद्रक इस विधा के महान साहित्यकार थे। संस्कृत भाषा और उसकी उन्नति के साथ ही पाली व प्राकृत भाषा में भी इस युग में उत्कृष्ट रचनाएँ लिखी गई। बौद्ध सम्प्रदाय की प्रगति के फलस्वरूप अनगिनित अवदानों की रचना हुई जैसे दिव्यावदान आदि। कनिष्क का दरबार विद्वानों, दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों का पोषक था। चरक और सुश्रुत महान चिकित्सक एवं आयुर्वेदाचार्य थे। नागार्जुन इस युग का महान वैज्ञानिक था जिसने सापेक्षवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। यूनानियों के सम्पर्क के बाद इस युग में भारतीय ज्योतिष में नवीन सिद्धान्तों की स्थापना हुई और खगोल विद्या की वैज्ञानिक प्रामाणिकता बढ़ी। मध्य एवं रोमन साम्राज्य के सम्पर्कों के परिणामस्वरूप प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नई तकनीक विकसित जैसे तांबे के कुषाणकालीन सिक्के रोमन स्वर्ण मुद्राओं की नकल थे।

गान्धार कला (50 ई.पू. से 500 ई.)– गान्धार कला के विकास के लिए कुषाण युग प्रसिद्ध हैं। मूर्तिकला की गान्धार शैली को ग्रीको–रोमन, ग्रीकों–बुद्धिष्ट, हिन्द–यूनानी आदि नामों से भी जाना गया है। यद्यपि उस पर यूनानी–रोमन कलाओं का प्रभाव अधिक था किन्तु इसका विकास भारतीयों ने किया था। भारत के गान्धार प्रदेश में विकास होने के कारण ही इसे गाँधार शैली कहा गया। गांधार में भारतीय शिल्पकारों का एशियाई, यूनानी व रोमन शिल्पियों से सम्पर्क हुआ। इससे नई शैली का उद्भव हुआ उसमें बुद्ध की प्रतिमाएँ यूनान व रोम मिश्रित शैली में बनायी गई। कनिष्क के समय में महायान धर्म के उत्थान के कारण एवं विदेशी शासकों द्वारा बौद्ध धर्म ग्रहण करने से बुद्ध की मूर्तियॉ यूनानी ढंग से बनने लगी जो यूनानियों के पवित्र देवता 'अपोलो' की भांति लगती है। भारतीय मूर्तिकला में यूनानियों की महत्वपूर्ण देन है। गान्धार कला की विषय–वस्तु भारतीय थी केवल निर्माता यूनानी थे। इनमें यूनानी श्रृंगार तथा अलंकार की प्रधानता हैं ये भूरे या सलेटी रंग पत्थरों से बनती थी, बाद में चूने प्लास्टर का प्रयोग होने लगा भारी ओष्ठ, खिंची हुई आँखे, घुँघराले बाल, लम्बी मूँछे, बोझिल, हट युक्त वस्त्रों से ढकी मूर्तियों में बुद्ध की आकृति यथार्थतः के निकट लाने का प्रयास किया गया है। कुषाणकाल में ही मूर्तिकला की गांधार व अमरावती शैलियों का स्वतन्त्र रूप से विकास हुआ था और उसमें भी श्रेष्ठतम कलाकृतियों का निर्माण हुआ।

शक सम्वत्– कनिष्क का स्मरण केवल उसको विजय के कारण ही नहीं किया जाता है। बल्कि अधिकांश इतिहासकार एक मत है कि कनिष्क ने 'सिंहसानुरुद्ध होने के समय 78 ई. से एक नया सम्वत् शुरू किया, यह शक सम्वत कहलाता है। इसका प्रचलन आज भी हमारे देश में है।

विदेशी व्यापार की उन्नति (आर्थिक स्थिति)

इस युग में विदेशी व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण

भारत आर्थिक दृष्टि सम्पन्न राष्ट्र बन गया था और लोगों के आर्थिक जीवन में समृद्धि के चिन्ह दिखाई देने लगे। स्थलमार्गों एवं नदी मार्गों के विकास ने जहाँ आन्तरिक व्यापार में वृद्धि की, वहीं समुद्री मार्गों ने विदेशी व्यापार को सुदृढ़ता प्रदान की। स्थल मार्ग से पाटलिपुत्र ताम्रलिप्ति से जुड़ा हुआ था और वहाँ से जहाज बर्मा और श्रीलंका जाते थे। मध्य एशिया व पश्चिम एशिया को जाने वाले विभिन्न मार्गों का विकास हुआ। एक स्थल मार्ग से तक्षशिला काबुल से तथा दूसरे मार्ग से कन्धार ईरान से जुड़ा था। कुषाणों ने उस 'रेशम के मार्ग' (Silk Route) पर नियंत्रण कर लिया जो चीन से चलकर मध्य एशिया होते हुए रोमन साम्राज्य तक पहुँचता था। यह रेशम मार्ग कुषाणों का बहुत बड़ा आय का स्त्रोत था। इस प्रकार भारत के व्यापारी दक्षिणी अरब और लाल सागर क्षेत्रों से जुड़ गए थे। इसके परिणामस्वरूप कुषाण काल में भारत को रोमन साम्राज्य के साथ समृद्धि बहुत बढ़ी।

इसी समय भारतीय व्यापारियों ने चीनी सिल्क व्यापार में मध्यस्थ के रूप में भाग लेना शुरू कर दिया। भारत के व्यापारी चीन से रेशम खरीदकर रोमन साम्राज्य के व्यापारियों तक पहुँचाते थे, जिससे उन्हें बड़ा लाभ होता था। भारत में हाथीदाँत का सामान, काली मिर्च, लौंग, मसाले, सुगन्धित पदार्थ और औषधियाँ तथा सूती व रेशमी कपड़े बड़ी मात्रा में रोम निर्यात किये जाते थें भारत की बारीक मलमल रोम में बहुत लोकप्रिय हुई। इस व्यापार का केन्द्र केरल प्रदेश था। बाद में रोम से प्रतिवर्ष लाखों की स्वर्ण मुद्राएँ भारत आने लगी। ऐसी बहुत ही मुद्राएँ खुदाई में प्राप्त हुई हैं। चीन व रोम के अलावा भारत का व्यापार बर्मा, जावा, सुमात्रा, चम्पा आदि दक्षिण–पूर्वी एशिया देशों के साथ भी था। व्यापार में वृद्धि के साथ–साथ मुद्रा का भी विकास हुआ। इण्डोग्रीक शासकों व कुषाण शासकों ने बड़ी संख्या में सोने के सिक्के चलाए। मुद्रा का व्यापक प्रचलन इस युग की सबसे बड़ी देन है। मुद्रा एवं व्यापार के कारण देश में कई नगरों का विकास हुआ। नगरीकरण से विकसित नगरीय संस्कृति के प्रमाण और अवशेष भारत और मध्य एशिया में भी मिले हैं। यह हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि स्वयं सम्राट कनिष्क एक बड़ा निर्माता था जिसने कनिष्कपुर और सिरमुख सहित अनेक नगरों की स्थापना की थी। पुरूषपुर या पेशावर उसकी प्रथम और मथुरा उसकी द्वितीय राजधानी थी, जो कुषाण कालीन समृद्धि का प्रतीक बन गई थी। मथुरा के सोंख क्षेत्र की खुदाई से कुषाणकालीन संस्कृति सात स्तरों से प्राप्त हुई है। पंजाब में जालन्धर, लुधियाना व रोपड़ से कुषाणकालीन श्रेष्ठ निर्माण प्राप्त होते हैं।

धार्मिक जीवन –मौर्योत्तर काल में राजत्व की एक विशिष्ठ अवधारणा उभर कर आई इसमें कुषाण राजाओं ने अपनी तुलना देवताओं से की। उन्होंने देवपुत्र की उपाधी धारण की। वस्तुतः इन विदेशी शासकों की सामाजिक स्वीकृति हेतु धार्मिक वैधता आवश्यक थी। ऐसी पद्धति समकालीन रोमन, यूनानी और ईरानी पद्धति में विद्यमान थी, इन्होंने सिक्कों पर भी अपने चित्र छापकर अपने प्रभामण्डल को राजतत्त्व से देवतत्त्व सिद्धान्त जैसा प्रतिपादित किया है।

सामाजिक जीवन– कुषाण कालीन समाज समृद्ध था। महिलाओं को पर्याप्त स्वतन्त्रता थी, घर में उनके पृथक कक्ष होते थे। पोशाक में एकरूपता नहीं थी, गन्धार क्षेत्र के लोग सामान्यतया धोती बाँधते थे। कमर में फेंटा लगाते थे और सिर पर रूमाल या साफा बाँधते थे। समाज समृद्धि, विविधताओं तथा अनेक गतिविधियों से परिपूर्ण था। यह मथुरा के शिलालेखों से स्पष्ट है जिसमें जीवन को अनेक गतिविधियों वाला बताया गया है। नाचने–गाने वाद्य यन्त्रों के उपयोग, नाटकों जादू–टोने व साहित्य का उल्लेख है।

कुषाण साम्राज्य का उद्देश्य एवं प्रभाव – मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् पहली बार एक विशाल साम्राज्य बना जिसमें न केवल समस्त उत्तरी भारत ही सम्मिलित था बल्कि उसके बाहर के कई प्रदेश भी सम्मिलित थे जो मध्य एशिया तक फैले थे। इस प्रकार भारत बाहर की दुनिया के साथ घनिष्ठ सम्पर्क में आया।

इस युग में धर्म, साहित्य और मूर्तिकला का भी महत्वपूर्ण विकास हुआ, विशेष कर महायान बौद्ध धर्म का उदय, गान्धार कला और बौद्धमूर्ति का आगमन एच. जी. रालिन्सन का मत है ''कुषाण युग भारतीय संस्कृति के इतिहास का महत्वशाली युग है।

निश्चित ही यह कला–साहित्य, ज्ञान–विज्ञान व निर्माणों का दौर था। कुषाण काल भारत के इतिहास को ऊंचाइयाँ प्रदान करता है। असंख्य कुषाण भारतीय धर्मों के अनुयायी बन गए, कुषाणों ने भारतीय ढ़ंग को अपना लिया, समय के साथ वह भारत भूमि में एकाकार हो गए। अन्त में कुषाणों ने भारत की संस्कृति को आत्मसात कर उसकी मुख्यधारा में विलीन हो गए।

कनिष्क का मूल्यांकन

साक्ष्यों से प्रमाणित होता है कि लगभग 23 वर्ष तक शासन करने के पश्चात् भी कनिष्क निरन्तर युद्धरत रहा, इसी तंग आकर उसके सेनापतियों ने उसकी हत्या कर दी थी। कनिष्क प्राचीन भारत के महान्तम शासकों में एक था। एक महान् योद्धा, साम्राज्य निर्माता, कलाकारों तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। अपनी सैन्य सफलताओं में वह समुद्रगुप्त का अग्रगामी था। हर्षवर्धन के समान वह बौद्ध धर्म का प्रचारक था तथा अशोक की ही तरह एक महान् निर्माता भी था। बौद्ध अनुश्रुतियों में कनिष्क के अनेक निर्माणों का उल्लेख मिलता है। कनिष्क की तुलना अशोक से की गई है। बौद्ध धर्म के प्रभाव से दोनों में महान् परिवर्तन हुए। धर्माचरण में कनिष्क हमें अशोक का स्मरण कराता है। बौद्ध धर्म में सुधार के लिये उसने अशोक की तरह बौद्ध संगीति का आयोजन किया। धर्मात्मा होने के साथ–साथ वह विद्यानुरागी भी था। उसका दरबार सम्राट विक्रमादित्य के समान विद्वानों से अलंकृत था। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त एक यूनान अभियन्ता 'आगिसिल्स' भी उसके दरबार में था। विद्वानों के सहयोग से उसने संस्कृत भाषा की उन्नति में सहयोग दिया। कनिष्क अपनी मुद्राओं के लिए भी इतिहास में प्रसिद्ध है। उसकी स्वर्ण मुद्राएँ यह बताती हैं कि देश उस समय कितना सम्पन्न था। रोमन साम्राज्य से मैत्रीपूर्ण सम्बंध होने के कारण भारत–रोम व्यापार में उस समय असीमित उन्नति हुई। भारत में वस्त्र, आभूषण व प्रसाधन सामग्री निर्यात की जाती थी तथा उसके स्थान पर सोना भारत आता था।

व्यापार का प्रमुख केन्द्र व प्रमुख व्यापारिक मार्गों से जुड़ा होने के कारण बैक्ट्रिया कनिष्क के साम्राज्य का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। उपर्युक्त उपलब्धियों के आधार पर कनिष्क को प्राचीन भारत के विदेशी शासकों में महानतम् स्थान देना उचित ही है।

कुषाण साम्राज्य का पतन– महान कुषाण साम्राज्य कनिष्क प्रथम के समय में अपने गौरव के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गया। इसी समय में कुषाण साम्राज्य से केवल भारत के ही नहीं बल्कि मध्य एशिया के शासक भी भय खाते थे। किन्तु इस गौरव को कनिष्क प्रथम के उत्तराधिकारी अक्षुण्ण न रख सके। और उनके अधिकांश राज्य भारतीय शासकों के हाथ में आ गए। उसमें मुख्यतः नाग, मालव और कुणिन्द वंश अथवा जातियां थी। एक मत के अनुसार उनके पतन के जिम्मेदार कारणों में महत्वपूर्ण कारण उनका भारतीय जातियों में घुल–मिल जाना रहा है। इरान में सस्सैनियम साम्राज्य के उदय को भी कुछ इतिहासकार उनकी अवनति के कारणों में गिनते हैं। जिसके कारण कुषाण साम्राज्य समाप्त हो गया।

हूण

हूणों की उत्पत्ति को लेकर इतिहासकारों में एक मत का अभाव है। अधिकतर इतिहासकारों का मत है कि हुण मंगोलों की तरह ही मध्य एशिया की एक खनाबदोश व बर्बर जाति थी इन्होंने भारत की धन सम्पदा को खूब लूटा, कुछ इतिहासकार इनको बंजारो व गुर्जरों की उपजाति की संज्ञा भी देते है तो कुछ राजपूतों के पूर्वज के रूप में भी इन्हें स्वीकार करते है। हूणों की उत्पत्ति मूलतः काकेशस से मानी जाती है। वहां से इन्होंने अपना विस्तार मध्य व दक्षिणी ऐशिया के अन्य देशों में फैलाना शुरू किया। भारत में इनका प्रवेश पश्चिम से हुआ। जिसका समय लगभग 450 ईस्वी माना जाता है। हूणों द्वारा चलाए गए स्वर्ण सिक्के को हूण कहा जाता था। इस जाति के लोगों को चीन में हुयान या हूण कहा जाता है जो चीन के हुन्नाव प्रदेश से संबंधित है।

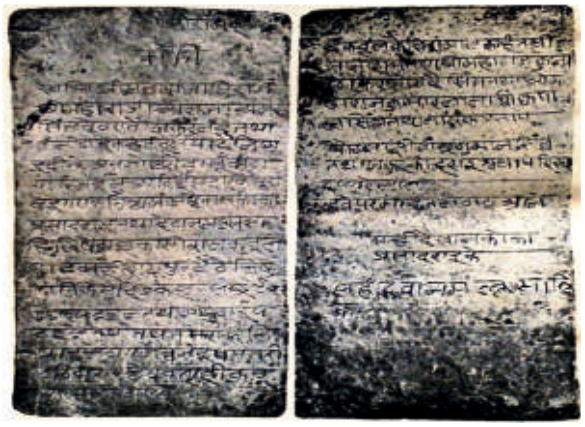

हूण शासकों की लिपि

स्कन्दगुप्त एवं हूण आक्रमण

हूण भारत के राजनैतिक नक्षत्र पर तब आते है जब शक्तिशाली गुप्त शासक स्कन्दगुप्त को उनके शासनकाल में मध्य एशिया की इस हूण जाति के लगातार सैकड़ों हमलों के द्वारा ललकारा गया। यद्यपि स्कन्दगुप्त ने उन्हें सफल तो नहीं होने दिया पर स्कन्दगुप्त की विजयश्री भी धुंधली ही रही। स्कन्दगुप्त का अंतिम समय भी इन आक्रान्ताओं के साथ संघर्ष में ही व्यतीत हुआ। कालान्तर में गुप्तकाल की शक्ति के क्षीण होने के संधिकाल में हुणों के राजा तोरमाण ने आर्यावत अर्थात् मालवा (मध्यप्रदेश) को विजय करने के बाद भारत में स्थायी निवास बना लिया। तोरमान के बाद उसके पुत्र मिहिरकुल या मिहिरगुल ने पंजाब पर आक्रमण पर उसे अपने अधीन कर लिया।

हूण राजा तोरमान– तोरमान हूणों का सबसे प्रतापी राजा था, उसके पुत्र मिहिर कुल व तोरमाण ने मथुरा व तक्षशिला में संयुक्त रूप से किया और वहां बहुत रक्तपात किया। जैन ग्रन्थ कुवलयमाल के अनुसार तोरमान चन्द्रभागा नदी के किनारे स्थित पवैय्या नगरी से भारत पर शासन करता था। इतिहासकारों के अनुसार पवैय्या नगरी ग्वालियर के पास स्थित थी।

यशोवर्मन द्वारा हूणों का दमन

हूणों के अत्याचार का मुकाबला स्थानीय शासक यशोवर्मन और बालदित्य ने मिलकर किया। यह समय 528 ईस्वी बताया जाता हैं। यशोवर्मन के आक्रमण से हूण परास्त जरूर हो गये थे, किन्तु वे अपने मूलस्थान मध्यएशिया नहीं गए। बल्कि हिन्दू धर्म व संस्कृति को आत्मसात करके इसके अभिन्न अंग बन गए और इसी में विलीन हो गए।

धर्म – ऐसा माना जाता है कि हुणों का धर्म शैव धर्म था, उन्होंने ही हर–हर महादेव का नारा दिया था। हूण जाति के बहादुर व पराक्रमी होने में कोई संदेह नहीं है। यह बात भी इतिहास सम्मत है कि उन्होंने भारत भूमि को ही आत्मसात कर लिया। अतः इतिहासकारों का यह कहना न्यायसंगत है कि आठवीं शताब्दी के राजपूत युग में हूणों का रक्त मिश्रित रहा होगा।

उद्देश्य एवं प्रभाव – हूण मध्य एशिया से नरसंहारक, क्रूर व बर्बर जाति के रूप में हमलावर की शक्ल लिए भारत पर चढ़ आए थे। किन्तु अन्त में भारतीय संस्कृति के रीति–रिवाजों को आत्मसात करके इसकी मुख्यधारा में विलीन हो गए और अन्य आक्रमणकारियों की तरह सदा–सदा के लिए भारतीय बन गए।

हूणों के आक्रमण से गुप्त शासकों की कमजोरी का पता तो चलता ही है, उसके साथ ही पश्चिमी व मध्य एशिया की जातियों के आक्रमणों का सिलसिला भी शुरू हो चुका था।

अध्ययन बिन्दु

- मौर्योत्तर काल में केन्द्रीय व्यवस्था बिखरी हुई रही जो पुनः गुप्तकाल में स्थापित हो सकी।
- बौद्ध धर्म कुषाण शासक कनिष्क के समय ही हीनयान–महायान में विभाजित हो चुका था।
- यूनानियों के आगमन से सुन्दर सिक्के आरंभ हुए थे।
- राजा पोरस की वीरता की तारीफ सिकन्दर ने की थी।
- मिलिन्दपन्ह पुस्तक में मेनाण्डर व बौद्ध विद्वान भिक्षु नागसेन के बीच के वार्तालाप का विवरण है।

- ❖ मूर्तिकला की गांधा शैली में महात्मा बुद्ध के घुँघराले वालों का उल्लेख है।
- ❖ शक शासकों की पाँच शाखाएँ थी जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण नासिक व उज्जैन शाखा थी।
- ❖ भारतीय समाज की धारा में विदेशियों का समावेश हो चुका था।
- ❖ सिकन्दर व मेनाण्डर दोनों यूनानी शासक थे।
- ❖ मेनाण्डर हिन्द–यवन शासक था।
- ❖ रूद्रदमन महान शक शासक था।
- ❖ कुषाणों का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा कनिष्क था।
- ❖ कुषाणों का कार्यकाल सम्पन्न व समृद्धि का काल था।
- ❖ जूनागढ़ अभिलेख में रूद्रदमन की विजयों का उल्लेख मिलता है।
- ❖ कनिष्क बौद्ध धर्म का प्रचारक व अनुयायी था।
- ❖ महर्षि चरक व सुश्रुत कनिष्क के राजवैद्य थे।
- ❖ शकों की दो शाखाएँ थी पार्थियन व बैक्ट्रीयन।

अभ्यासार्थ–प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. प्राचीन इतिहासकार कल्हण की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है:–
   (अ) इण्डिका (ब) सूर्य–अलंकार
   (स) राजतरंगिनी (द) दिव्यादान ( )

2. चरक संहिता के रचयिता महर्षि चरक किस शासक के दरबार की शोभा बढ़ाते थे :–
   (अ) कनिष्क (ब) रूद्रदमन
   (स) सिकन्दर (द) चन्द्रगुप्त ( )

3. शकों के प्रसिद्ध शासक का नाम निम्नलिखित में से था:–
   (अ) यशोवर्मन (ब) रूद्रदमन
   (स) हर्षवर्द्धन (द) अशोक ( )

4. त्रिपिटक संबंधित है :–
   (अ) बौद्ध धर्म से (ब) जैन धर्म से
   (स) ईसाई धर्म से (द) मुस्लिम धर्म से ( )

5. जूनागढ़ अभिलेख किसकी जानकारी उपलब्ध करवाता है:–
   (अ) चीनी शासक की (ब) कुषाण शासक की
   (स) यूनानी शासक की (द) शक शासक की ( )

6. बौद्ध धर्म का विभाजन किसके काल में हुआ था :–
   (अ) पृथ्वीराज (ब) रूद्रदमन
   (स) उदयराज (द) कनिष्क ( )

7. बौद्ध धर्म की चतुर्थ संगीति का स्थान था :–
   (अ) पेशावर (ब) कुण्डलवन (कश्मीर)
   (स) उज्जैन (द) मथुरा ( )

8. हूणों का सर्वाधिक संघर्ष निम्न में किसके साथ हुआ था :–
   (अ) चन्द्रगुप्त (ब) घटोत्कच
   (स) स्कन्दगुप्त (द) समुद्रगुप्त ( )

अति लघूत्तरात्मक प्रश्न (अधिकतम दो पंक्तियों में उत्तर दो)

1. मेगस्थनीज की पुस्तक का नाम बताइए ।
2. शून्यवाद के प्रर्वतक कौन थे ?
3. सिकन्दर कहाँ का शासक था ?
4. हिन्दू राजा पोरस ने किससे मुकाबला किया था ?
5. ''मिलिन्दपन्ह'' पुस्तक किस शासक को समर्पित है ?
6. भारतीय व यूनानी मिश्रण से किस शैली की मूर्तिकला का विकास हुआ था ?
7. शकों को किस चीन जाति ने परास्त किया था ?
8. पराक्रम व साहस के लिए इस काल के शासक किस उपाधि को धारण करते थे ?
9. सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार करवाने वाले शासक का नाम क्या था ?
10. संस्कृत भाषा को बढ़ावा देने वाला शासक कौन था ?
11. कुषाण वंश का संस्थापक कौन था ?
12. ''आक्सस नदी से पूर्व में गंगा नदी तक मध्य एशिया में खुरासन से लेकर उत्तर–प्रदेश में वाराणसी तक'' कौन शासक राज्य करता था ?
13. बौद्ध धर्म किन दो शाखाओं में विभक्त हो गया था ?
14. प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुमित्र ने किस सभा (संगीति) की अध्यक्षता की थी ?
15. विदेशी व्यापार की समृद्धि को प्रदर्शित करने वाले चीन से रोम तक फैले मार्ग को किस नाम से जाना जाता था ?
16. किस विद्वान को भारतीय आइन्स्टीन कहा जाता है?
17. पाटलिपुत्र का संबंध दक्षिण में किस बंदरगाह से था ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न (अधिकतम आठ पंक्तियों में उत्तर दो)

1. हूण शासक तोरमाण से मिलकर किन भारतीय शासकों ने मुकाबला किया ?
2. विदेशी आक्रान्तकारी वंशों का नाम क्रमशः लिखिए।
3. बाह्य आक्रमणों की जानकारी देने वाले स्त्रोतों के बारे में संक्षेप में जानकारी दीजिए।
4. महान कवि अश्वघोष की रचनाओं का नाम लिखो।
5. यूनानी आक्रमण के समय भारतीय राजनैतिक स्थिति को अपने शब्दों में लिखो।

6. ''राजा पुरु अथवा पोरस का प्रतिरोध पराक्रम व साहस से परिपूर्ण था'' इस वाक्य को स्पष्ट करें।
7. सिकन्दर की मृत्यु के बाद किस यूनानी शासक ने आक्रमण का दूसरा चरण शुरू किया व उसका क्या परिणाम हुआ ?
8. राजा मेनाण्डर पर 15 पंक्तियाँ लिखिए।
9. मुद्रा (सिक्के) के क्षेत्र में यूनानी मुद्रा की विशेषताएँ बताइए।
10. ''शक शासक रूद्रदमन को जनकल्याण के लिए स्मरण किया जाऐगा'' इसके पक्ष में अपने तर्क संक्षेप में लिखिए।
11. बौद्ध धर्म के उत्थान हेतु अशोक के बाद सर्वाधिक रूप से कुषाण शासक कनिष्क को श्रेय जाता है। समझाइए।
12. कुषाण शासक कनिष्क किन विद्वानों, साहित्यकारों व दार्शनिकों का आश्रयदाता था।
13. विदेशी व्यापार की उन्नति का काल किसे कहेंगे व क्यों ?
14. ''गान्धार कला'' भारतीय मूर्तिकला का नवीन रूप था। इसकी विशेषताओं को बताइए।
15. कनिष्क के सैनिक अभियानों का उल्लेख करिए।
16. यूनानी आक्रमण के प्रभाव को रेखांकित करिए।

निबन्धात्मक प्रश्न (लगभग चार–पाँच पृष्ठों में उत्तर दीजिए)

1. ''भारतीय समाज की धारा में विदेशियों का समावेश'' विषय पर विस्तार से लिखो।
2. कुषाण राजा कनिष्क का एक महान शासक के रूप में मूल्यांकन करते हुए उसके कार्यकाल की विशेषताओं का वर्णन करो।
3. भारतीय यूनानी राजा मेनान्डर की उपलब्धियाँ बताइए।
4. कुषाण कालीन समाज, धर्म व वाणिज्य–व्यापार का वर्णन करिए।
5. ''शक राजा रूद्रदमन एक महान शासक था।'' समझाइए।

उत्तरमाला (बहुचयनात्मक प्रश्नों की)

1.	(स)	2.	(अ)	3.	(ब)	4	(अ)
5.	(द)	6.	(द)	7.	(ब)	8.	(स)

.....